समस्या समाधान–आचार्यश्री महाप्रज्ञ–साहित्य के आलोक में

–डॉ. सोहनराज तातेड़

दर्शन न्याय की अनेक गहन पुस्तकों का अध्ययन करके मुनि नथमल एक ओर प्रखर दार्शनिक बने तो दूसरी ओर संस्कृत, प्राकृत व्याकरण का अध्ययन करके उन भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान भी बन गये। बनारस के संस्कृत महाविद्यालय में उन्होनें धाराप्रवाह संस्कृत में प्रवचन एवं आशुकवित्व किया। उनके पांडित्यपूर्ण प्रवचन को सुनकर पंडितों ने कहा – ''लगता है इन्होनें कर्ण पिशाचिनी विद्या को सिद्ध कर रखा है।'' बम्बई में भारतीय विद्या भवन में अनेक उच्च कोटि के संस्कृत विद्वानों के बीच मुनि नथमल का प्रवचन हुआ, उसे सुनकर कुछ प्रोफेसरों ने पूछा–''आपने किस विश्वविद्यालय में अध्ययन किया है?'' मुनि नथमल ने कहा – तुलसी विश्वविद्यालय में। इस नाम को सुनकर प्रोफेसर आश्चर्य चकित रह गये। मुनि नथमल ने आगे चलते आचार्यश्री तुलसी की ओर संकेत करते हुए कहा– वह है हमारा चलता फिरता विश्वविद्यालय।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार अध्यात्म के मूलभूत आधार दो है– आत्मा और कर्म। यदि हम आत्मा और कर्म को हटा लें तो अध्यात्म आधार शून्य हो जायेगा। अध्यात्म की समूची कल्पना और व्यवस्था इस आधार पर है कि आत्मा को कर्म से मुक्त करना है। यदि आत्मा नहीं है तो किसे मुक्त किया जाय? यदि कर्म नहीं है तो किससे मुक्त किया जाय? ''आत्मा को कर्म से मुक्त करना है'' इस सीमा में समूचा अध्यात्म समा जाता है।[1] आचार्यश्री महाप्रज्ञ स्वयं एक महान् अध्यात्मयोगी हैं। उन्होनें साधना के दौरान जो आत्मानुभव किया, उसका स्पष्ट विवेचन उनके साहित्य में उपलब्ध होता है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ की दृष्टि में शिक्षा प्रणाली में संतुलन स्थापित करने वाले चार तत्व हैः–(1) प्राणधारा का संतुलन (2) जैविक संतुलन (3) क्षमता की आस्था का जागरण (4) परिष्कार–दृष्किोण, भावना एवं व्यवहार का परिष्कार।[2] मानसिक ओर भावनात्मक विकास के लिए प्राणधारा का विकास और संतुलन आवश्यक है। प्राण के दो प्रवाह है– ईड़ा और पिंगला। ये प्राचीन योगशास्त्रीय नाम हैं। आज की शरीर शास्त्रीय भाषा में एक का नाम है – अनुकंपी नाड़ी तंत्र और दूसरी का नाम है – परानुकम्पी नाड़ी तंत्र। प्राण के इन दोनों प्रवाहों में जब तक संतुलन नहीं होता तब तक हम जिस प्रकार के व्यक्ति की परिकल्पना करते हैं वह परिकल्पना सार्थक नहीं होती। जब प्राण का एक प्रवाह अधिक सक्रिय हो जाता है तो उद्दण्डता और उच्छृंखलता पनपती है, हिंसक और तोड़फोड़ की वृति बढ़ती है। यह सारा कार्य दाईं प्राणधारा की सक्रियता का परिणाम है। यदि प्राणधारा का बांया प्रवाह सक्रिय होता है तो व्यक्ति में हीन भावना का विकास होता है, भय की वृत्ति बढ़ती है, दुर्बलता आती है। दोनों का संतुलन संधने पर संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसके लिए समवृत्ति–श्वास–प्रेक्षा का अभ्यास बहुत महत्वपूर्ण है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का मानवता को अवदान ''प्रेक्षाध्यान'' में समवृत्ति श्वास प्रेक्षा का गहन विवेचन उपलब्ध है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने प्रेक्षाध्यान के उपसंपदा के पांच निम्न सूत्र दिए, जिसकी साधना सतत् और हर क्रिया के साथ हो सकती है :–

i. **भावक्रिया** – उपसंपदा का पहला सूत्र है भाव क्रिया। जिस क्रिया काल में जो भाव है, वह भाव पूर्ण क्रियाकाल में बना रहे। इसी का नाम भाव क्रिया है।[3]

ii. **प्रतिक्रिया विरति** – उपसंपदा का दूसरा सूत्र है – प्रतिक्रिया विरति। क्रिया करना प्रतिक्रिया नहीं करना।

iii. **मैत्री** – उपसंपदा का तीसरा सूत्र है मैत्री। मैत्री का अर्थ है–सबमें आत्मोपम्य बुद्धि का विकास, आत्मानुभूति का विकास। अर्थात् जैसे आत्मा मेरे में है वैसी ही आत्मा दूसरे में है। इस प्रकार की आत्मतुला का अनुभव ही यथार्थ रूप में मैत्री है।[4]

iv. **मितभाषण –** आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार – भाषा चंचलता बढ़ाने वाली है। जो अचंचल होने की साधना करना चाहते हैं, उनके लिए यथावकाश, यथोचित वाणी का संयम आवश्यक है। मितभाषण उसी का प्रयोग है।[5] भगवान महावीर ने भी मौन(वचन गुप्ति) के महत्व को बताते हुए उपदेश दिया–वचन गुप्ति के द्वारा मनुष्य निर्विचारता को प्राप्त करता है।[6]

v. **मिताहार** – उपसंपदा का पांचवा सूत्र है मिताहार। साधना का मूल प्रयोजन है–रूपान्तरण। रूपान्तरण के लिए आहार शुद्धि का अभ्यास आवश्यक है। हित–मित और सात्विक आहार के अभ्यास से रूपान्तरण घटित होने लगता है। जैसे–जैसे यह अभ्यास बढ़ता है, शरीर की विद्युत बदलती है, रसायन बदलती है, चैतन्य केन्द्रों की सक्रियता बढ़ती है, उस दिन नई दुनियां का अनुभव होता है और तब आदमी इस स्वर में कहता है–जो सम्पदा आज तक नहीं मिली, वह आज हस्तगत हो गई, जो जागृति आज तक नहीं आई, वह आज आ गई।[7]

अध्यात्म और विज्ञान दोनों ही सत्य की खोज के मार्ग हैं। वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपेक्षित है और शांतिपूर्ण जीवन के लिए आध्यात्मिकता भी अनिवार्य है। आध्यात्मिकता + वैज्ञानिकता = आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व। आज की अपेक्षा है कि व्यक्ति न कोरा वैज्ञानिक बने और न कोरा आध्यात्मिक बनें अपितु आध्यात्मिक–वैज्ञानिक बने। इन दोनों का योग ही मानव जीवन की हर समस्या का समाधान है और जीवन विज्ञान का प्रस्थान है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के शब्दों में–''अध्यात्म और विज्ञान एक दूसरे के पूरक है। दोनों का सापेक्ष विकास जरूरी है। उनकी दृष्टि में आध्यात्मिक विकास की कसोटियाँ–

i. आत्मोपम्य भावना का विकास
ii. इन्द्रिय और मन पर संयम
iii. दमित वासनाओं का परिष्कार
iv. अनासक्ति का विकास
v. वृत्ति के संदर्भ में सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति का बोध।

वैज्ञानिक व्यक्तित्व की कसौटी – सत्य की खोज, चेतना की खोज, मानव की खोज।[8]

कुंडिलिनी जागरण

जैन परम्परा के प्राचीन साहित्य में कुंडलिनी शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। उतरवर्ती साहित्य में इसका प्रयोग मिलता है, जो कि तंत्र शास्त्र और हठ योग का प्रयोग है। हठयोग में कुंडलिनी का जो वर्णन है उसकी तुलना जैन दर्शन में तेजोलेश्या, तेजोलब्धि से की जा सकती है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार कुंडलिनी का यदि वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो यह

हमारी विशिष्ट प्राणशक्ति है। प्राणशक्ति का विशेष विकास ही कुंडलिनी का जागरण है।[9] जैन दर्शन के अनुसार शरीर के दो प्रकार है–स्थूल और सूक्ष्म। अस्थि चर्ममय शरीर स्थूल है। तैजस शरीर सूक्ष्म और कर्मशरीर अतिसूक्ष्म है। हमारे पाचन, सक्रियता और तेजस्विता का मूल तैजस शरीर है। यह पूरे शरीर में व्याप्त है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार इसके दो विशेष केन्द्र है–मस्तिष्क और नाभि का पृष्ठ भाग। मन और शरीर के बीच सबसे बड़ा सम्बन्ध सेतु मस्तिष्क है। उससे तैजस शक्ति(प्राण शक्ति) निकलकर शरीर की सारी क्रियाओं का संचालन करती है। नाभि के पृष्ठ भाग में खाए हुए आहार का प्राण के रूप में परिवर्तन होता है। अतः शारीरिक दृष्टि से मस्तिष्क और नाभि का पृष्ठ भाग – ये दोनों तेजोलेश्या के महत्वपूर्ण केन्द्र बन जाते हैं।[10]

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार कुंडलिनी को जगाने के अनेक हेतु है। उनमें से प्रेक्षाध्यान के निम्न प्रयोग भी सशक्त माध्यम बनते हैं :–

1. **दीर्घश्वास प्रेक्षा** – दीर्घश्वास प्रेक्षा की प्रक्रिया है। वे लिखते हैं–यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन एक घंटा दीर्घश्वास प्रेक्षा का अभ्यास करता है तो उसके कुंडलिनी जागृत होती है।
2. **अन्तर्यात्रा** – अन्तर्यात्रा में सुषुम्ना के मार्ग से चित्त को शक्ति केन्द्र से ज्ञान केन्द्र तक और ज्ञान केन्द्र से शक्ति केन्द्र तक ले जाया जाता है। चित्त की यह यात्रा कुंडलिनी को जागृत करने का महत्वपूर्ण माध्यम है।
3. **शरीर प्रेक्षा** – शरीर दर्शन का अभ्यास पुष्ट होने पर कुंडलिनी (तैजस शक्ति) का जागरण होता है।
4. **चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा** – चैतन्य केन्द्रों को देखने से वहां के सारे अवरोध समाप्त हो जाते हैं, जिसमें कुंडलिनी–जागरण सहज हो जाता है।
5. **लेश्याध्यान** – कुंडलिनी जागरण का यह सबसे शक्तिशाली माध्यम है। रंग हमारे भावतंत्र को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। रंगो के ध्यान से शक्ति का सहज जागरण होता है।

इस प्रकार प्रेक्षाध्यान की पूरी प्रक्रिया कुंडलिनी के जागरण की प्रक्रिया है।[11] अनुप्रेक्षा आदतों को बदलने का एक महत्वपूर्ण प्रयोग है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार शरीर के किसी भी अवयव में रोग है तो उसका संवादी मस्तिष्क का अवयव रोग ग्रस्त हो जाता है। अनुप्रेक्षा द्वारा मस्तिष्क के उस अवयव को प्रभावित करके रोग को नष्ट किया जाता है।[12] प्रेक्षाध्यान में भावात्मक स्वास्थ्य के लिए अनेक प्रयोग सुझाए गये हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अभिमत में भावात्मक स्वास्थ्य का मूल सूत्र है–वीतरागता। वीतराग का भावतंत्र प्रशस्त और शक्तिशाली होता है। प्रेक्षाध्यान भावात्मक स्वास्थ्य की प्रक्रिया है। इसका मुख्य उद्देश्य भावतंत्र का परिष्कार करना है। यदि भावात्मक स्वास्थ्य है तो मानसिक स्वास्थ्य भी होगा और शारीरिक स्वास्थ्य भी होगा। यदि भावतंत्र अस्वस्थ है तो न मन स्वस्थ होगा और न शरीर स्वस्थ होगा। यह एक नया अभ्युगमय है। आज अधिकांश लोग शारीरिक स्वास्थ्य की चिंता करते हैं। मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य को गौण कर देते है। इस संदर्भ में आचार्यश्री महाप्रज्ञ का मानना है कि शारीरिक स्वास्थ्य का मूल्य 10% है मानसिक स्वास्थ्य का मूल्य 30% है और भावात्मक स्वास्थ्य का मूल्य 60% है अतः हम उल्टे क्रम से चलें। पहले भावात्मक स्वास्थ्य की ओर फिर मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की चिंता करें। इस क्रम से चलने पर चिंता स्वयं अचिंता बन जायेगी।[13]

चैतन्य विकास और भाव परिष्कार का एक बहुत बड़ा माध्यम है–संकल्प शक्ति का विकास। संकल्प शक्ति का अर्थ है – कल्पना को भावना का रूप देना। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का

मानना है – संकल्प की शक्ति असीम है। उसकी असीमता को बताते हुए वे लिखते हैं – संकल्प शक्ति का विकास होने पर हम आकाश के वायुमंडल से परमाणुओं को ले सकते हैं और उन्हें इच्छित आकार में परिणमन कर सकते हैं। वैक्रिय लब्धि के द्वारा नाना रूपों का निर्माण करना, आहारक लब्धि के द्वारा पुतले का निर्माण करना, विचारों का संप्रेषण करना, विचारों को मंगवाना – ये सारे संकल्प शक्ति के प्रयोग हैं।[14] आचार्यश्री का मानना है कि सारे भाव मोह की व्यूह रचना है। भावतंत्र को स्वस्थ बनाने के लिए इस मोह के चक्रव्यूह को तोड़ना आवश्यक है। इस व्यूह रचना का संचालन करने वाले दो तत्व है – अहंकार और ममकार। इनसे राग–द्वेष उत्पन्न होता है और राग–द्वेष, कषाय और नो कषाय को उत्पन्न करते हैं। एक पूरा क्रम है–अहंकार–ममकार, राग–द्वेष, कषाय–नोकषाय और फिर योग–मन, वचन काया की प्रवृत्ति। प्रेक्षाध्यान के प्रयोग इस व्यूह रचना को तोड़ने के प्रयोग हैः–

1. **चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा** – मोह के चक्रव्यूह से बाहर निकलने के लिए मूल बिन्दु को पकड़ना आवश्यक है और वह है–भाव। भावतंत्र पर प्रहार करने के लिए अशुभ भावों का विरोध तथा शुभ भावों की दिशा में प्रस्थान करना जरूरी है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार ज्योतिकेन्द्र, शांतिकेन्द्र और ज्ञानकेन्द्र इन तीनों चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान करने से भावतंत्र का परिष्कार होता है।[15] ज्योतिकेंन्द्र पर सफेद रंग के ध्यान से क्रोध संतुलित होता है। शांतिकेन्द्र पर ध्यान करने से उत्तेजना के भाव शांत होते हैं। भावतंत्र के परिष्कृत होने से मन में कोई विकृत चिंतन नहीं आता, वाणी से कोई कटु शब्द नहीं निकलता और शरीर की क्रिया भी बदल जाती है।
2. **लेश्याध्यान** – शुभ भावों को पुष्ट करने का एक महत्वपूर्ण प्रयोग है – लेश्याध्यान। लेश्याध्यान रंगों का ध्यान है। शुभ रंगों के ध्यान से अशुभ भाव शुभ भाव में परिणित हो जाते हैं। लाल, पीला और सफेद – ये रंग भाव शुद्धि के कारण हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के शब्दों में–रंग रोग–निवारण का साधन है, क्योंकि यह शरीर के असंतुलन को ठीक करता है। रंग शरीर का स्वाभाविक भोजन वनस्पति जगत में प्राप्त होता है वह सघन अवस्था में रंग ही है। अलग अलग रंगों का अलग अलग प्रभाव होता है। जिसकी परिणति भावात्मक एवं मानसिक स्वास्थ्य है। लाल रंग के ध्यान से तेजो लेश्या के स्पंदन जागते हैं, जिससे मन की दुर्बलता समाप्त होती है, सहनशीलता का विकास होता है। पीले रंग के ध्यान से मन की प्रसन्नता, बौद्धिक विकास, प्रज्ञा का विकास तथा मस्तिष्क और नाड़ी तंत्र सुदृढ़ बनता है। श्वेत रंग के ध्यान से उत्तेजना, आवेग, आवेश, चिंता, तनाव, वासना, क्रोध आदि शांत होते है।[16]

आचार्यश्री महाप्रज्ञ का कहना है – अधिक आहार से मल संचित होता है। जिसके शरीर में मल संचित होता है, उसका नाड़ी संस्थान शुद्ध नहीं रहता और मन भी निर्मल नहीं रहता। ज्ञान और क्रिया दोनों की अभिव्यक्ति का माध्यम नाड़ी संस्थान है। नाड़ी संस्थान के कार्य में कोई अवरोध न हो, मन की निर्मलता बनी रहे, अपान वायु दुषित न हो। इन्हीं तथ्यों के आधार पर उपवास, मितभोजन, रस परित्याग आदि मार्ग सुझाए गये। निर्जरा के ये प्रथम चार भेद आहार–शुद्धि से जुड़े हुए हैं।[17] आचार्यश्री महाप्रज्ञ लिखते हैं – जब हम आसन करते हैं तब हमारे चैतन्य केन्द्र जागृत होते हैं। यह केन्द्र या चक्र मूलतः कर्म शरीर में है। वहां से वे प्राण शरीर से स्थूल शरीर में प्रतिबिम्बित होते हैं। आसन के द्वारा शरीर में सक्रियता पैदा कर

देने पर उसका प्रभाव प्राण शरीर और कर्म शरीर तक पंहुचता है, जिससे चक्रस्थान या चैतन्य केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं और अपना संकुचन छोड़कर जागृत हो जाते हैं।[18]

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने एक शब्द में साधना का उद्देश्य बताते हुए लिखा है–''निज्जरट्ठाए'' साधना का उत्कृष्ट लक्ष्य निर्जरा है। यह अमूर्त की भाषा है। यदि इसे मूर्त की भाषा में कहें तो–साधना है स्वास्थ्य विकास के लिए, साधना है शक्ति विकास के लिए।[19] ज्योतिकेन्द्र और शांति केन्द्र पर ध्यान करने से स्वास्थ्य का विकास होता है। आनन्द केन्द्र पर ध्यान करने से सुख का विकास होता है। दर्शन केन्द्र पर ध्यान करने से ज्ञान का विकास होता है। स्वास्थ्य केन्द्र या शक्ति केन्द्र पर ध्यान करने से शक्ति का विकास होता है।[20] आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने प्रयोग सुझाया–कायोत्सर्ग की मुद्रा में बैठकर मन को शांत कर अनुभव के स्तर पर देखें – मैं क्रोध नहीं हूँ, मेरी चेतना क्रोध नहीं है, प्राण की धारा उसके साथ जुड़ रही है और मैं क्रोध बन रहा हूँ। विवेक कहता है कि मैं प्राण की धारा के साथ क्रोध को न जोडूँ। प्राण की धारा को हटाए और क्रोध को अपनी चेतना से अलग अनुभव करें। अनुभव के स्तर पर पहुंचकर यह अनुभव करें–मैं क्रोध नहीं हूँ, मैं अभिमान नहीं हूँ, मैं घृणा नहीं हूँ, मैं राग नहीं हूँ, मैं द्वेष नहीं हूँ। ये मेरे स्वभाव नहीं हैं। इस गहराई में जाकर यह अनुभव करें और वहां जो शेष बचेगा, वह मैं हूँ यह विवेक की पद्धति है। यही सम्यक् दर्शन है।[21]

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार स्वतंत्रता, पूर्णता एवं आनन्द की अनुभूति है।[22] जिसके अभाव में समस्याएं उत्पन्न होती है और जिसके होने पर समस्याएं सुलझती है, उसका नाम अध्यात्म है। अध्यात्म केवल आत्मानुभूति का प्रयोग है। यह सर्वथा अपदार्थ की चेतना है। इसे चेतना का सर्वोत्तम विकास कहा जा सकता है।[23] आचार्य महाप्रज्ञ की मान्यता है जब कायोत्सर्ग का अभ्यास पुष्ट हो जाता है, तब यह अनुभव होता है कि – शरीर अचेतन है, मैं शरीर नहीं हूँ। श्वास नहीं हूँ। इन्द्रिय अचेतन है, मैं इन्द्रिय नहीं हूँ। मन अचेतन है, मैं मन नहीं हूँ। भाषा अचेतन है, मैं भाषा नहीं हूँ। कायोत्सर्ग के अभ्यास से शरीर, श्वास, इन्द्रिय आदि आत्मा से पृथक् है, यह भेद–ज्ञान होने पर ही अस्तित्व का दर्शन अर्थात् सम्यक् दर्शन होता है। सम्यक् दर्शन के फलित हैं – शान्ति, मुक्ति की चेतना, अनासक्ति, अनुकम्पा और सत्य के प्रति समर्पण।[24]

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार – सकर्मा, सत्कर्मा और निष्कर्मा आत्मा की ये तीन अवस्थाएं क्रमशः बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का ही नामान्तर है। जो मनुष्य शरीर और आत्मा को एक मानता है वह बहिरात्मा है। जो मनुष्य शरीर और आत्मा की भिन्नता का अनुभव करता है, वह अन्तरात्मा है। जो मनुष्य सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के द्वारा आत्मा के आवृत रूप को प्रकट करता है वह परमात्मा है।[25] इन्हें क्रमशः मूर्च्छा की चेतना, जागृति की चेतना और वीतरागता की चेतना कह सकते हैं।[26] आचार्य महाप्रज्ञजी लिखते है–जिस व्यक्ति की अंतर्दृष्टि जाग जाती है, उसका चिंतन स्वस्थ हो जाता है। स्वस्थ चिंतन का पहला सूत्र है–अन्यत्व की अनुप्रेक्षा। मैं शरीर से भिन्न हूँ और शरीर मुझ से भिन्न है, इस शरीर का बोध होने पर वह शरीर में होने वाली घटनाओं को द्रष्टा की भांति देखता है। उसका संवेदन नहीं करता। अन्यत्व अनुप्रेक्षा से पहली बार उसे अनुभव होता है कि मैं अकेला हूँ। वह सोचता है, जब शरीर ही मेरा नहीं है तो दूसरा कौन मेरा होगा? एकल अनुप्रेक्षा के स्थिर होने पर एक नया चिंतन उभरता है, वह है – आत्मा के साथ शरीर, पदार्थ, व्यक्ति का संयोग है। जहां संयोग है, वहां वियोग निश्चित है। और जब अनित्य अनुप्रेक्षा अनुभव का विषय बन जाती

है तब उसमें से एक आलोक की किरण निकलती है। उसे लगता है कि परिवार, पदार्थ में त्राण बुद्धि मात्र भ्रांति है। वे स्वयं अनित्य, अत्राण है अतः मुझे त्राण कैसे देंगें? इस प्रकार अंतर्दृष्टि के जागरण से अन्यत्व, अन्यत्व से एकत्व, एकत्व से अशरणत्व का बोध स्पष्ट हो जाता है।[27]

कर्मों का विरोध करने वाली आत्मा की अवस्था का नाम संवर है। तत्वार्थ सूत्र में आश्रव के विरोध को संवर कहा है।[28] आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने संवर का अर्थ किया है–अपने चैतन्य का अनुभव, अपने अस्तित्व का बोध। यह तब तक संभव नहीं जब तक चय को रिक्त नहीं किया जाता।[29] जिस प्रकार आंधी आने पर पहले दरवाजे बंद कर दिए जाते हैं और फिर झाड़ू लेकर कचरे की सफाई की जाती है। इसी प्रकार आत्मशोधन के लिए आश्रव रूपी द्वार को बंद किया जाता है। इस विरोध के द्वारा बाहर से आने वाले परमाणुओं का स्थगन हो जाता है। भगवान महावीर ने तप के बारह भेद बतलाए। इन बारह भेदों में प्रथम छः बहिरंग तपोयोग के और शेष छः अंतरंग तपोयोग के प्रकार है। अनशन, उनोदरी, वृति–संक्षेप, रस–परित्याग, कायक्लेश और प्रतिसंलीनता–तपस्या के ये छः प्रकार स्थूल शरीर के माध्यम से कर्म–शरीर को प्रकंपित करते हैं अतः इन्हें बहिरंग तप कहा जाता है। तथा प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग–तपस्या के ये छः प्रकार मन के माध्यम से कर्म–शरीर को प्रकंपित करते है अतः इसे अंतरंग तप कहते हैं।[30]

दार्शनिक होने के साथ कवि होना दुर्लभ संयोग माना जाता है। आचार्य महाप्रज्ञ की कविताओं को पढ़कर रामधारीसिंह दिनकर और मैथिलीशरण गुप्त भी अत्यन्त प्रभावित हुए। आचार्य महाप्रज्ञ के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए राष्ट्रकवि दिनकर ने कहा– ''हम विवेकानन्द के समय नहीं थे हमने उनको नहीं देखा, उनके विषय में मात्र पढ़ा है। मुनि नथमलजी आज के विवेकानन्द है।[31] आचार्यश्री महाप्रज्ञ से जब जब उनके विकास का रहस्य पूछा गया तो वे इसका उत्तर देते हुए कहते हैं – ''मैंने अपने लिए कुछ सफलता के सूत्र निश्चित किए थे। मैं ऐसा कोई काम नहीं करूंगा, जिससे मेरे विद्यागुरु मुनि तुलसी को अप्रिय लगे। मैं ऐसा कोई काम नहीं करूंगा, जो मेरे विद्यागुरु को यह सोचना पड़े कि मैंने जिस व्यक्ति को तैयार किया, वह मेरी धारणा के अनुरूप नहीं बन सका। मैं किसी व्यक्ति का अनिष्ट चिंतन नहीं करूंगा। मेरी यह निश्चित धारणा हो गई है। दूसरे का अनिष्ट चाहने वाला उसका अनिष्ट कर पाता है या नहीं कर पाता किन्तु अपना अनिष्ट निश्चित ही कर लेता है। इन सूत्रों ने मेरा जीवन पथ सदा आलोकित किया। मुझे कभी भी दिग्भ्रान्त होने का अवसर नहीं मिला''।[32]

इस प्रकार आचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा लिखित साहित्य वर्तमान युग की विकट समस्याएं–तनाव, असंवेदनशीलता, आवेश, आवेग, अवसाद, आंतकवाद, हीनभावना, घृणा, धोखाधड़ी, अनैतिकता, अप्रमाणिकता एवं अशांति के समाधान में एक रामबाण दवाई की तरह कारगर सिद्व हो रहा है। आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य में प्रयोग व प्रशिक्षण के माध्यम से विभिन्न समस्याओं के समाधान बतलाये गये हैं। आपके साहित्य का गहन अध्ययन करने से दृष्टिकोण की विशुद्वि होती है, आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है तथा जीवन का सर्वांगीण विकास होता है। आपका साहित्य मानव की वर्तमान समस्याओं का समाधान कर मानवता की बहुत बड़ी सेवा कर रहा है। आज की मानव जाति आपके साहित्य के माध्यम से दिए गये अवदानों के लिए चिरऋणी रहेगी।

सलाहकार,
जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय,
लाडनूं (राजस्थान)

संदर्भ सूची :–

[1] जैन योग – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 10
[2] जीवन विज्ञान – शिक्षा का नया आयाम, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 6–9
[3] भीतर की ओर, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 50
[4] अपना दर्पण अपना बिम्ब, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ.31
[5] भीतर की ओर, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 58
[6] उत्तराध्ययन सूत्र, 29। 55
[7] आहार और अध्यात्म–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ.54
[8] नया मानव नया विश्व, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ.160
[9] मैं हूँ अपने भाग्य का निर्माता, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ.86
[10] जैन योग – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ.158
[11] मैं हूँ अपने भाग्य का निर्माता, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ.89
[12] तुम स्वस्थ रह सकते हो, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ.9
[13] एकला चलो रे–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ.215
[14] जैन योग–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 84
[15] ध्यान क्यों?–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 16
[16] आभामण्डल–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 239
[17] जैन योग–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 123
[18] महावीर की साधना का रहस्य–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 215
[19] मैं हूँ आपने भाग्य का निर्माता–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 72
[20] वही, पृ. 71
[21] किसने कहा मन चंचल है,–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 23
[22] मैं : मेरा मनः मेरी शांति,–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 73
[23] अध्यात्म के रहस्य, प्रस्तुति से
[24] किसने कहा मन चंचल है,–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 12–13
[25] जैन योग–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 13
[26] महावीर की साधना का रहस्य, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 19
[27] जैन योग,–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 70–71
[28] तत्वार्थ सूत्र,–आचार्य उमास्वाति, 9।1
[29] कर्मवाद–युवाचार्य महाप्रज्ञ(वर्तमान में आचार्य महाप्रज्ञ), पृ. 97
[30] सत्य की खोज : अनेकांत के आलोक में,–आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 70
31 महाप्रज्ञ : जीवन दर्शन–मुनि धनंजयकुमार, पृ. 52
[32] वही, पृ. 7